WWJMRD 2020; 6(10): 61-62
www.wwjmrd.com
International Journal
Peer Reviewed Journal
Refereed Journal
Indexed Journal
Impact Factor MJIF: 4.25
E-ISSN: 2454-6615

अनुराधा सिंह
शोध–छात्रा (संगीत)
महात्मा गाँधी चित्रकूट, ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट
जिला–सतना (म0प्र0), भारत

Correspondence:
अनुराधा सिंह
शोध–छात्रा (संगीत)
महात्मा गाँधी चित्रकूट, ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट
जिला–सतना (म0प्र0), भारत

भारतीय संगीत का समीक्षात्मक अध्ययन

अनुराधा सिंह

सारांश
भारतीय संगीत अति प्राचीन रहा है, भारत की सभ्यता एवं संस्कृति उतनी ही विस्तृत है जितना की भारत के संगीत का इतिहास। गान मानव के लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना रूदन। भौतिक दृष्टि से ध्वनि की नियमितता एवं सन्तता से ही संगीत का उद्भव होता है। गीत स्वयं की अनुभूति है, स्वयं को जानने की शक्ति है और एक सुन्दरतापूर्ण ध्वनि की कल्पना है जिसका सृजन करने के लिए एक ऐसे अनुशासन की सीमा रेखा को मालूम करना पड़ता है जिसकी सीमा में रहते हुए असीम कल्पना करने का अवसर प्रदान करता है। मनुष्य अनुशासन में ही रहकर संगीत को प्रकट करता है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के विचार, बुद्धिमत्ता, संवेदना एवं कल्पना से भिन्नता होने के कारण प्रस्तुति में भी विविधता अवश्य होती है। इस तरह देश एवं काल क्रमानुसार संगीत के मूल तत्व समाज में प्रयोग और प्रस्तुतिकरण के कारण प्रस्तुति में भी विभिन्नता अनिवार्य रूप से अवश्य होती है। इस तरह काल एवं देश के क्रमानुसार संगीत के मूल तत्व समाज में उसके प्रस्तुतिकरण और प्रयोग की शैलियों में परिवर्तन होना स्वाभाविक है।
संगीत कला में भी हर एक गुण की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक अवस्थाओं के अनुसार बदलाव होते आ रहे हैं। लगातार विगत इस वर्षों में भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं फिल्म संगीत की विफलताओं और उपलब्धियों का यदि अवलोकन करें तो प्रतीत होता है कि यह बदलाव विभिन्न दिशाओं में नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही प्रकार का रहा है।

शब्द–कुंजी– संगीत, भारतीय, अवलोकन, परिवर्तन, प्राचीन, वर्तमान, आधुनिक

प्रस्तावना–
हमारे भारतीय संगीत का जो इतिहास है, वह अति प्राचीन है। हमारे देश की संस्कृति एवं सभ्यता उतनी ही वृहद है जितना कि यहाँ के संगीत का अतीत। हमारी संगीत कला अपने चमत्कारपूर्ण कौशल से इस पूरे विश्व को चमकाता रहा है। सम्पूर्ण विश्व में भारत की गौरव गाथा विख्यात है। विभिन्न विद्वानों ने भारतीय संगीत की उत्पत्ति के बारे में भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। इसमें अधिकतर विद्वानों ने कोई न कोई रूप में धार्मिक मान्यताओं से संगीत की उत्पत्ति का प्रयास किया है। शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर के अनुसार शास्त्रकारों ने 'संगीत' शब्द की निम्नवत् व्याख्या की है–''गीतं वाद्यं तथा नृतं त्रयं संगीतमुच्यते''।[1]
भगवती 'सरस्वती' को कला एवं विद्या की देवी कहा गया है। सरस्वती के हाथों में वीणा वाद्य का होना संगीत का प्रतीक माना गया है। इसी प्रकार भगवान् विष्णु का शंख, श्रीकृष्ण की वंशी तथा भगवान् शिव का डमरू भी संगीत का प्रतीक है।
संगीत एक प्रायोगिक कला के अन्तर्गत आती है। सर्वप्रथम संगीत को प्रयोग किया गया उसके पश्चात् सिद्धान्त के रूप में उसी को शास्त्रबद्ध किया गया। संगीत क्रियात्मक रूप पर टिका हुआ है, परन्तु संगीत के क्रियात्मक पक्ष की सही अभिव्यक्ति के लिए कुछ नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शास्त्रों की जरूरत है। इसी गम्भीरतापूर्ण सतत् चिन्तन में विद्वानों का योगदान होता रहा है।
संगीत के अन्तर्गत 'शास्त्र' की परिधि पर, मानव मन की सृजनात्मकता, सौन्दर्यबोधी तथा संप्रेक्षणात्मक प्रवाह के फलस्वरूप एक भाव तथा चिन्तनमय विश्व का सृजन होता है और होता आया है। जिसका विश्लेषण, अवलोकन, निरूपण तथा सिद्धान्तीकरण ही शास्त्र है। शास्त्र का मूल स्वरूप ग्रन्थ ही है। वेदों को भारतीय संस्कृति का आधार माना जाता है। पाश्चात्य विद्वान भी हमारे भारतीय वेद को प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। सर्वप्रथम संगीत वेदों में ऋचा गान के रूप में था। ''वेदों की संख्या चार है। जिन्हें ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद कहते हैं।''[2] ''सामवेद पूर्ण रूप से संगीतमय है। इसी वेद के द्वारा संगीत को नियम और विधान से बाँधा गया था। ऐसा कहा जाता है कि

सामगान से पहले तीन स्वरों का प्रयोग होता था। ये तीनों उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित कहलाते थे।''[3] आगे चलकर ये सात स्वर बन गए।

वैदिक काल के समान ही पौराणिक काल में विद्यार्थियों के लिए संगीत का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक माना जाता था। वैदिक काल में चारों आश्रम भी इस युग में समाज के आवश्यक अंग थे तथा विद्यार्थी जीवन का पालन कर ही पुरुष जीवनयापन के लिए अग्रसर होते थे। गृहस्थ जीवन में संगीत एक बहुत ही आवश्यक अंग था। इस युग में लोक नृत्यों तथा लोकगीतों का प्रचार बढ़ता जा रहा था। इस युग में संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए छोटे–छोटे वर्ग बन गये थे। इन वर्गों में संकीर्ण प्रवत्तिया का विकास होने लगा था। इस संकीर्ण प्रवृत्ति के कारण साधारण जनता संगीत से वंचित होने लगी थी। इसका प्रमुख कारण यह भी था कि संगीत का मनोरंजन पक्ष मजबूत होता जा रहा था। संगीत की पवित्र और आत्मिक सुन्दरता का ह्रास होता जा रहा था तथा संगीत की बाहरी सुन्दरता अधिक प्रबल होती जा रही थी। सार्वजनिक उत्सवों में प्रचलन ज्यादा होने लगा था। इस युग में वीणा वाद्य का प्रचलन अधिक था।

पौराणिक काल में हवन और यज्ञ का प्रचलन अवश्य कम हो गया था। संगीत को मात्र मोक्ष का साधन न मान उसे जीवन की प्रगति का माध्यम भी समझा जाने लगा था। इसी युग में उपनिषदों की स्थापना हुई, जिसमें संगीत का आभास होता है। भारतीय चिन्तन धारा के मुख्य स्रोत उपनिषद हैं। उपनिषदों में सामगान की भरपूर प्रशंसा पायी जाती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार, तत्कालीन समाज विषयक विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है–जिसमें महर्षि वाल्मीकि ने बताया कि ''रामायण में विपंची जैसी प्राचीन वीणाओं एवं शुद्ध सप्त जातियों का वर्णन है। जिससे यह सिद्ध होता है कि चार षड्ज ग्रामिक एवं तीन मध्यम जातियों से वाल्मीकि परिचित थे। संगीत के लिए रामायण में गांधर्व संज्ञा उपलब्ध है तथा युद्ध संगीत के लिए कहीं–कहीं युद्ध गांधर्व संज्ञा भी प्राप्त है।''[4]

भारतीय संगीत का विकास विभिन्न काल के विद्वानों द्वारा उल्लेख किया गया है, जिसमें से भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में छः अध्यायों में संगीत का विवरण मिलता है। मतंग मुनि ने 'वृहद्देशी' ग्रन्थ की रचना देशी रागों को समझाने के लिए किया। 'अष्टाध्यायी' पाणिनी की रचना है जिसमें मृदंग, हुड़क, झर्झर, नर्तकों एवं गायकों से सम्बन्धी अनेक बातों का विवरण है।

संगीत मकरन्द एवं नारदीय शिक्षा का लेखन काल सातवीं आठवीं शताब्दी में हुआ। जिसमें रागों को बजाने गाने के समय पर भी गम्भीरता से सोचा गया है। भारत में 11वीं सदी में मुसलमान भी फारस से अपने साथ संगीत लाये।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक संगीत के इस बदलते परिवेश में इसमें विविध परिवर्तन होते रहे हैं। अतिप्राचीनकाल में भी जो प्रबन्ध गायन प्रचलित था, अब वह ध्रुपद गायन के रूप में मिलता है। इस तरह ध्रुपद गायन शैली से ख्याल गायन का विकास हुआ। प्राचीन जातिगायन से राग का उद्भव हुआ। इस प्रकार इस परिवर्तित परिवेश के कारण रागों के स्वरूपों में भी परिवर्तन होता रहा है। यदि इसे लिपिबद्ध नहीं किया गया होता तो आज हमें वर्तमान में कैसे ज्ञात हो पाता कि हम क्या राग बजा रहे हैं।

भारतीय संगीत के भाव पक्ष में, मुख्य रूप से रस निष्पत्ति में भावों का अवदान रहा है। जैसे–वैदिक संगीत साहित्य में स्वरों के बारे में बताया गया है कि उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित इन शब्दों का भावानुसार अर्थ प्रकट हो। प्राचीन समय में श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना की जाती रही है एवं स्वर श्रुतियों से ही बनते हैं। श्रुतियों से सम्बन्धित विभिन्न विद्वानों के अलग–अलग मत रहे हैं अर्थात् कौन सा स्वर किस श्रुति पर आधारित हो, इसके लिए विद्वानों में मतभेद भी हैं। परन्तु हर स्वर कितनी श्रुतियों से युक्त हो इसके लिए एक सर्वमान्य नियम बनाया गया है जो निम्नलिखित है–

''चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमा।
द्वै द्वै निषादगांधारो त्रिस्त्री ऋषभधैवतो।।''[5]

प्राचीन संगीत एवं आधुनिक संगीत के मध्य एक बड़ी खाईं भी है जो आसानी से भरी नहीं जा सकती। हमारे भारतीय संगीत का दृष्टिकोण भी अब बिल्कुल बदल गया है। प्राचीन युग का संगीतज्ञ अपने को एक बिल्कुल दूसरे सांस्कृतिक वातावरण में पाता था जिसमें ज्ञान, कला और विद्या का स्थान अधिक ऊँचा था तथा उस समय गुण के सच्चे पारखी अधिक मात्रा में होते थे। परन्तु अब यह कहा जाय कि संगीत इस दृष्टि से नहीं देखा जाता तथा न सुनने वाले उसे इस कसौटी पर कसते हैं तो यह बात गलत न होगी। आधुनिक युग में संगीत का मान उस उच्च स्तर पर नहीं है, जैसे पूर्व में था। इसके कई कारण अवश्य हो सकते हैं मगर यह मानना ही पड़ेगा कि संगीत का पहले जैसे मूल्य अब नहीं है और न अब संगीत प्रेमी में ही पहली जैसी तन्मयता है। इस युग की तुलना कलयुग से करते हुए किसी संगीतज्ञ ने कहा था–

''गुण नहीं हिरानों गुणा ग्राहक हिरानों हैं।''[6]

निष्कर्ष–

भारतीय संगीत प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनवरत् गतिशील रहा है। प्रारम्भ में इसकी उत्पत्ति व उसके संरचना में बदलाव देखने को मिलते हैं। भारतीय संगीत की उत्पत्ति सरस्वती के वीणा वाद्य के प्रतीक से माना जाता है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में छः अध्यायों में संगीत से सम्बन्धित विवरणों का उल्लेख किया है व मतंगमुनि के वृहद्देशी की रचना देशी रोगों को समझाने के लिए किया। वर्तमान समय में लोगों की भावनाओं के अनुसार संगीत में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। इससे यह पता चलता है कि समयानुसार परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आगे भी समयानुसार बदलाव होते रहना चाहिए जिससे भारतीय संगीत का महत्त्व बना रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. शर्मा डॉ0 स्वतंत्र, ''भारतीय संगीत : वैज्ञानिक विश्लेषण'', प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1996, पृ0सं0 1
2. शर्मा भगवतशरण, ''भारतीय संगीत का इतिहास'', पृ0सं0 29, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0), संस्करण–2010
3. शर्मा डॉ0 मृत्युजंय, ''संगीत मैनुअल'', पृ0सं0 90, एच0जी0 प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2017
4. शर्मा डॉ0 स्वतंत्र, ''भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण'', पृ0सं0 29, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण–2014
5. शर्मा डॉ0 मृत्युजंय, ''संगीत मैनुअल'', पृ0सं0 181, एच0जी0 प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2017
6. चौबे डॉ0 सुशील कुमार, ''हमारा आधुनिक संगीत'', पृ0सं0 3, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तम टण्डन हिन्दी भवन 6, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ–226001, तृतीय संस्करण–2005